प्रेषकः- ग्राम स्तरीय वनाधिकार समिति दिनांक...............................

ग्राम...

तहसील पलिया कलां-खीरी

वास्तेः-
अध्यक्षः- राज्य स्तरीय निगरानी समिति वनाधिकार उत्तर प्रदेश
मुख्य सचिव महोदय उत्तर प्रदेश सरकार
लखनऊ उ0प्र0

मार्फतः- जिलाधिकारी खीरी
विषयः- दुधवा क्षेत्र खीरी के हमारे 20 गॉवों द्वारा वनाधिकार कानून-2006 नियमावली संशोधन-2012 के तहत किये गये दावों को जिला स्तरीय समिति खीरी द्वारा निरस्त किये जाने के सम्बंध में राज्य निगरानी समिति में अपील।

आदरणीय महोदय
विषय से सम्बंधित जिला स्तरीय वनाधिकार समिति खीरी उ0प्र0 द्वारा हमारे दावों को निरस्त किये जाने वाले आदेशों के सन्दर्भ में आपको इस कानून की राज्य निगरानी समिति का अध्यक्ष होने के नाते हमें बिन्दुवार यह कहना है किः-

1. यह कि जिला स्तरीय समिति को ग्राम सभा द्वारा दायर किये दावे को निरस्त करने का वनअधिकार कानून 2006 (अनूसुचित जनजाती और अन्य परम्परागत वन निवासी (वनाधिकारों की मान्यता कानून, २००६) में कोई कानूनी प्रावधानही है। धारा -–। ज़िला स्तरीय समिति केवल दावो का अनुमोदन कर अंतिम रूप दे सकती है जिसे की
उपखण्ड स्तरीय समिति द्वारा पास किया गया है। जैसा कि अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वनवासी नियम 2008 के नियम 8 में स्पष्ट किया गया है जिसमें विशेष रूप से जिला स्तरीय समिति के कार्यों का उल्लेख है जिन्हें गांव द्वारा दायर दावों को अस्वीकार करने का अधिकार नहीं है।

2. यह कि ज़िला स्तरीय समिति द्वारा समुदायिक दावो को खारिज करना यह दर्शाता है कि या तो ज़िला समिति वनाधिकार कानून को समझते नही है या फिर ज़िला स्तरीय समिति द्वारा यह
कदम जान बूझ कर उठाया गया है जो कि वन विभाग से प्रेरित लगता है जो नही चाहते वनों में वनाश्रित समुदाय का नियंत्रण हो।

3. यह कि दावा निरस्त करने का अधिकार केवल ग्राम स्तरीय समिति को है न कि जिला स्तरीय समिति को। व अगर ज़िला स्तरीय समिति इस पर कोई निर्णय नही ले सकती है तो उन्हें दावो को ग्राम स्तरीय समिति को अपनी टिप्पणी लगाते हुए वापिस सौपने चाहिए। जबकि ज़िला
स्तरीय समिति ने ग्राम सभा द्वारा पारित दावो को वापिस नही किया है और आधिकारिक रूप से जवाब देने में भी कई महीने लगा दिये जो की गैर कानूनी प्रक्रिया है।

4. यह कि जिला स्तरीय समिति द्वारा संसद के इस कानून के साथ खिलवाड़ किया गया है। हमारे ग्राम सभा के दावो को निरस्त करने के आदेश में जिला समाज कल्याण विभाग व उप खंड स्तरीय समिति द्वारा धोखा देने वाली कार्यवाही की गई है। पत्र में दावो को ज़िला स्तरीय समिति द्वारा निरस्त किये जाने की तारीख 15 मार्च 2021 अंकित की गई है व ग्राम वनाधिकार समितियों को इसकी सूचना

20 सितम्बर 2021 को दी जा रही है। यह पत्र भी तब ग्राम वनाधिकार समितियों को मिला जब उन्होंने अपने दावो की खोज करते हुए उप खंड स्तरीय समिति व जिला समिति को पत्र लिखा। ज़िला समिति के इस जवाब से यह साफ तौर पर प्रतीत होता है कि ज़िला स्तरीय समिति गुप् चुप तरीके से ग्राम सभाओं के दावो को वन विभाग के दबाव में पास नही करना चाहती थी इसलिए 60 दिन के समय को स्वयं नज़रअंदाज़ करते हुए दावो पर किसी भी तरह के फैसले को दबा कर रखा ताकि ग्राम स्तरीय वनाधिकार समिति का आपत्ति दायर करने का समय समाप्त हो जाये व मौके का फायदा उठाकर उनके दावो को कानून सम्मत न होने का कारण बता कर खारिज कर दिया जाए।

5. यह कि जिला स्तरीय समिति द्वारा दावे निरस्त करने के जो कारण लिखे गए हैं वह कानून सम्मत ही नहीं बल्कि असंवैधानिक भी है क्योंकि वनाधिकार कानून 2006 में संसद में पारित किया गया था जिस की प्रस्तावना मे सपष्ट रुप से यह लिखा है कि वन समुदाय के साथ ऐतिहासिक अन्याय हुए हैं । इसलिए यह कानून अस्तित्व में आया | लेकिन जिला स्तरीय समिति द्वारा जिस-जिस कारण को बताते हुए दावों को खारिज किया हैं वह कानून के अनुरूप नहीं है । जिला स्तरीय समिति द्वारा जिस गोदाबर्मन केस (1995) की बात कही गई है वह कोर्ट का आदेश है जो की संसद में बनाए 2006 कानून के बाद वन क्षेत्र में मायने नहीं रखता। 2006 के बाद वन क्षेत्र में वनाधिकार कानून ही मान्य है जो कि कानून की धारा 13 में स्पष्ट रूप से लिखा है।

ग्राम सभा के दावों को ख़ारिज करने का सर्वोच्च न्यायालय के जिस गोदावर्मन फैसले की वन विभाग द्वारा उल्लेख किया गया है दरअसल उसकी गलत व्याख्या की गई है और हमारे समुदाय के दावों को गलत तरीके से खारिज करने के आधार के रूप में प्रयोग किया गया है। वन अधिकार अधिनियम, 2006 की धारा 4 दुसरे कानूनों के उपर अधिक ताकत देता है| तथा इस संदर्भ में यह कानून केंद्र सरकार को इन सभी अधिकारों को आदिवासी एवं अन्य परम्परागत समुदायों के वन अधिकारों को सभी राज्यों में कानून की धारा 3 के आधार पर सुनिश्चित करता है|
गोदावर्मन आदेश भारतीय वन अधिनियम, 1927 के औपनिवेशिक कानून पर आधारित है। इसका 2006 के एफ.आर.ए. अधिनियम में प्रदान किये गए अधिकारों से कोई रिश्ता नहीं है| वन अधिकार कानून का रिश्ता बाकि कानूनों के साथ काफी महत्वपूरण है जिसे वन विभाग को समझना जरुरी है | 2006 के अधिनियम की धारा 13 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "इस अधिनियम और पेसा कानून(अनुसूचित क्षेत्रों के लिए विस्तार),1996 के तहत इन क़ानूनी प्रावधानों को जोड़ कर देखे जाये नाकि इस अधिनियम के क़ानूनी प्रावधानों को कम करके |" वास्तव में एफ.आर.ए. 2006, 1927 के कानून का स्थान लेता है जिसका आधार लेकर ज़िला प्रशासन द्वारा सामुदायिक दावों को अस्वीकृत किया गया जो सहीं नहीं है|

6. यह कि जब उप खंड स्तरीय समिति ने दावो को अपनी टिप्पणी लगाते हुए पास कर दिया तो वनाधिकार कानून की कौन सी धारा के तहत दावो को खारिज किया गया इसका जवाब हमे दिया जाय।
एफ.आर.ए., 2006 के तहत, दावों को आधारहीन तथ्यों पर ख़ारिज नहीं किया जा सकता है। अधिनियम के, अध्याय 4 के तहत, कानून उचित प्रक्रियाओं का पालन करने का प्रावधान करता है और यह भी कहता है कि किसी भी दावे को खारिज करने से पहले एक उचित कारण प्रदान किया जाना चाहिए। एफ.आर.ए. 2006 की धारा 6 के तहत, "बशर्ते कि पीड़ित व्यक्ति के खिलाफ ऐसी कोई याचिका का निपटारा नहीं किया जाएगा, जब तक कि उसे अपना मामला पेश करने का उचित अवसर न दिया गया हो।" हम यह कहना चाहते हैं की इस तरह से हमारे दावों को पारित करने में अनावश्यक देरी हुई है और वन विभाग के आदेश पर 2013 से दावों को लंबित रखा गया है| इसके अलावा, दावों की किसी भी "अस्वीकृति" को सही ठहराने के लिए कोई मजबूत सबूत या कारण प्रदान नहीं किया गया है।

7. यह कि जिला स्तरीय समिति द्वारा दिये गये इस आदेश के पैरा न05 से 9 में 1995 में दायर टी.एन. गोदावर्मन थिरूमल बनाम यूनियन आफ इण्डिया मुकदमे के फैसले का उल्लेख किया गया है। जबकि वनाधिकार कानून-2006 की धारा 4(7) में उल्लिखित है कि "वन अधिकार, सभी विल्लंगमों और प्रक्रिया सम्बंधी अपेक्षाओं से मुक्त रूप से प्रदत्त किया जायेगा, जिसमें वन (संरक्षण) अधिनियम-1980 के अधीन अनापत्ति इस अधिनियम में विनिर्दिष्ट के सिवाय वन भूमि में अपयोजन के लिये "शुद्ध वर्तमान मूल्य" और प्रतीकात्मक वन रोपण का संदाय करने की अपेक्षा भी सम्मिलित है" (1980 का 69)।

यह स्पष्ट है कि वन सम्बंधी किसी कानून में कोई बात होते हुए भी वनाधिकार कानून में दिये गये प्रावधानों को सर्वोपरि माना जायेगा। यानि यह कानून इससे पूर्व के वन सम्बंधी किसी भी कानून को और अदालतों द्वारा दिये गये फैसलों के ऊपर मान्य है।

यह कि जिला स्तरीय समिति अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर दावों को ख़ारिज करने का फैसला दे रही है| और इस तरह, कानून के तहत, किसी भी दावे को "अस्वीकार" करने के लिए 1995 के गोदावर्मन मामले का हवाला देने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। कि यह एक पुराना मामला है और एक औपनिवेशिक कानून के इर्द-गिर्द घूमता है और 2006 के अधिनियम के लागू होने के बाद दायर दावों को प्रभावित नहीं करना चाहिए।

8.यह कि ग्राम सूरमा के मामले में 2003 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा गाँवों को विस्थापित किये जाने के आदेश के बावज़ूद उ0प्र0 कानून एवं न्याय विभाग द्वारा इन आदेशों से आगे जाकर वनाधिकार कानून के तहत 2011 में ना सिर्फ लोगों को उनकी निवास एवं खेती की ज़मीनों पर मालिकाना अधिकारों को मान्यता दी गयी, बल्कि टाईगर रिज़र्व के कोर जोन में होने के बावज़ूद राजस्व का दर्जा भी दिया गया। जिससे जिला स्तरीय समिति द्वारा दी गयी उक्त दलीलें स्वतः ही निरस्त हो जाती हैं।

9. यह कि जिला स्तरीय समिति द्वारा दिये गये इस आदेश के अन्तिम पैरा में योजनाओं के लाभ के अतिरिक्त यह स्वीकार किया गया है कि ग्राम सूरमा के व्यक्तिगत दावे स्वीकार किये गये। गौरतलब है कि जब एक कानून के तहत व्यक्तिगत अधिकारों को मान्यता दी जा चुकी है, तो उसी कानून के तहत किये गये सामुदायिक अधिकारों के दावों को कैसे निरस्त किया जा सकता है ? एक ही कानून में पात्रता और अपात्रता का यह दोहरा मापदंड यह सिद्ध करता है कि सामुदायिक दावों को लेकर जिला स्तरीय समिति द्वारा लिया गया यह निर्णय पूरी तरह से कानून एवं कानून के नियमों का पूरी तरह से उलंघन है।

10.यह कि जिला स्तरीय समिति ने पत्र में यह लिखा है कि इस गावों के लोग ना तो वनों में रह रहे हैं और ना ही वे जीविका की वास्तविक आवश्यकताओं के लिये वनों पर निर्भरशील हैं। जबकि दावाकर्ता गावों के दुधवा के वनक्षेत्र में पिछले 200 वर्ष से अधिक समय से बसे होने के हमारे पास पुराने अभिलेख मौजूद है व जिसे हम उपखण्ड स्तरीय समिति के समक्ष प्रस्तुत भी कर चुके हैं।

10. यह कि अंत में हम यह कहना चाहते हैं कि जिला स्तरीय समिति द्वारा लिया गया यह निर्णय पूरी तरह से वन विभाग के अधिकारियों की मंशा के मुताबिक लिया गया निर्णय है। क्योंकि पूरे निर्णय में वनाधिकार कानून में दिये गये प्रावधानों का कोई जिक्र ना करके ब्रिटिश काल में व आज़ाद भारत में वनविभाग को असीमित ताकत देने वाले व वनाश्रित समुदाय विरोधी कानून "भारतीय वन अधिनियम-1927" और "वन्यजीव सुरक्षा अधिनियम1972" के प्रावधानों को ही आधार बनाया गया है। जबकि 2006 में वनाश्रित समुदायों के साथ उनके अधिकारों को पूर्व के किसी कानून या सरकारी दस्तावेज़ में उनके अधिकारों को अभिलिखित न करने के कारण उनके साथ हुए ऐतिहासिक अन्यायों की बात को "अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परम्परागत वननिवासी (वन अधिकारों की मान्यता) कानून-2006" यानि वनाधिकार कानून की प्रस्तावना में देश की माननीय संसद द्वारा उल्लिखित किया गया है।

इसके अलावा जिला स्तरीय समिति द्वारा दिये गये इस निर्णय को वनविभाग के अधिकारियों की मंशा के अनरूप इसलिये भी कहा जा सकता है कि इस निर्णय पर वन विभाग के तीन अधिकारियों के दस्तखत हैं। जबकि कानून में दिये गये अधिकार पत्र में केवल एक ही वनविभाग के अधिकारी के दस्तखत का प्रावधान है। अधिकार पत्र पर अधिकारिक रूप से समिति का अध्यक्ष होने के नाते जिलाधिकारी महोदय, नोडल ऐजेंसी विभाग समाज कल्याण अथवा जनजातीय विभाग के अधिकारी और एक वन विभाग के अधिकारी के हस्ताक्षर का ही प्रावधान है।

11. यह कि हमें पूरी तरह से संदेह है कि जिला स्तरीय समिति की उक्त बैठक जिसमें हमारे सामुदायिक वन संसाधन के अधिकारों के दावों को निरस्त करने का निर्णय लिया गया वह बैठक भी कानून में दिये गये प्रावधानों का पूरी तरह से उलंघन करके की गयी है। क्योंकि उस बैठक में जब वन विभाग के तीन अधिकारियों के बैठने का ही कोई प्रावधान नहीं है, तो इस आदेश पर तीन वन विभाग के अधिकारियों के हस्ताक्षर कैसे हुए? जबकि वनाधिकार कानून में उपखण्डीय वनाधिकार समिति, जिला स्तरीय वनाधिकार समिति व राज्य स्तरीय निगरानी समिति में तीन आदिवासी या अन्य परम्परागत वननिवासी समुदाय के लोगों के सदस्य होने की अनिवार्यता है। क्या जिला स्तरीय समिति की इस बैठक में वनाश्रित समुदाय का कोई सदस्य मौजूद भी था या नहीं ? यह भी एक बड़ा सवाल है, जिसके कारण इस बैठक की भी राज्य निगरानी समिति द्वारा समीक्षा की जानी चाहिये।

12. यह कि एफ.आर.ए. 2006 और संबंधित 2008 नियम सभी आदिवासियों और वनवासी समुदायों के जीवन में एक ऐतिहासिक मील का पत्थर हैं जो उनके जीवन और आजीविका दोनों की रक्षा करते हैं। संसद का अधिनियमन भारत के मूलनिवासी, आदिवासी, अन्य पारंपरिक वनवासी समुदायों के एक दशक के लंबे संघर्ष और अभिव्यक्ति का परिणाम है और स्थानीय लोगों को सशक्त बनाकर न्यायिक प्रणाली में एक बहुत ही आवश्यक बदलाव का प्रतीक है। समुदायों और उनकी ग्राम सभाओं को न केवल शासन के साथ बल्कि उनकी आजीविका, वनों और भूमि की सुरक्षा के लिए भी। उचित प्रक्रिया और नियमों का पालन न करने और देरी करने की रणनीति का उपयोग करके जिला प्रशासन इस कानून के उद्देश्य को हरा देता है जो हमारे हितों की रक्षा के लिए है। वास्तव में, यह अधिनियम भारतीय संविधान की अनुसूची V, VI और XI (अनुसूची IX उत्तर पूर्व से संबंधित है) के तहत आदिवासी, और वनाश्रित समुदायों के लिए पहले से बनाए गए संवैधानिक प्रावधानों को वैधानिक जीवन और अधिकार देता है।

2006 के अधिनियम के 'वस्तुओं और कारणों का विवरण' भी हमारे हितों और अधिकारों की रक्षा करता है और अधिकारियों द्वारा इस तरह के मनमाने और गैरकानूनी निर्णय कानूनी रूप से गारंटीकृत सुरक्षा के बावजूद पूरे समुदाय को नुकसान पहुंचाते हैं। कानून का उद्देश्य संविधान के 56 साल बाद अधिनियमित कानून के पीछे विधायी उद्देश्य बताते हैं, "वन में रहने वाले अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारंपरिक वन निवासियों में वन भूमि में वन अधिकारों और कब्जे को मान्यता देने और निहित करने के लिए एक अधिनियम। ऐसे जंगलों में पीढ़ियों से रह रहे हैं लेकिन जिनके अधिकारों को दर्ज नहीं किया जा सका है; इस प्रकार निहित वन अधिकारों और वन भूमि के संबंध में इस तरह की मान्यता और निहित करने के लिए आवश्यक साक्ष्य की प्रकृति को रिकॉर्ड करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करने के लिए। यह भी स्वीकार करते हुए कि वनवासी आदिवासी लोग और वन अविभाज्य हैं, यह औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा हमारे साथ किए गए "ऐतिहासिक अन्याय" को भी स्वीकार करता है। 2006 का एफ.आर.ए. एक "कानून है जो वन निवास अनुसूचित जनजातियों में वन अधिकारों की मान्यता सम्मान के साथ निहित करने की प्रक्रिया निर्धारित करता है।", ऐसा प्रतीत होता है कि न तो जिला प्रशासन और न ही उसके अधिकारियों को इस ऐतिहासिक कानून के पीछे के उद्देश्य की कोई समझ है।

यह कि ऐसे समुदाय के दावों को ऐसे प्राधिकरण द्वारा खारिज नहीं किया जा सकता है जिसके पास ऐसा करने की शक्ति नहीं है। इसके अलावा इन दावों की अस्वीकृति जल्दबाजी में की गई थी। यह

एक ज्ञात तथ्य है कि वनवासी समुदायों/अनुसूचित जनजातियों के बीच भूमि के साथ संबंध महत्वपूर्ण है और उनके लिए आजीविका का एक स्रोत भी है। वह भूमि उन्हें सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा भी देती है जिससे वे वर्षों से वंचित हैं।

समथा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य, (1997) 8 एससीसी 191 के ऐतिहासिक फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि, "अनुसूचित जनजातियों के लिए कृषि ही आजीविका का एकमात्र स्रोत है, इसके अलावा लघु वनों का संग्रह और बिक्री अपनी आय के पूरक के लिए उत्पादन करते हैं। भूमि उनकी सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक और मूल्यवान संपत्ति और अविनाशी बंदोबस्ती है जिससे आदिवासी अपना भरण-पोषण, सामाजिक स्थिति, आर्थिक और सामाजिक समानता, स्थायी निवास स्थान और काम और रहने का स्थान प्राप्त करते हैं। यह आर्थिक सशक्तिकरण के लिए एक सुरक्षा और स्रोत है। इसलिए जनजातियों का भी अपनी भूमि से अत्यधिक भावनात्मक लगाव होता है। जिस भूमि पर वे रहते हैं और जोतते हैं, वह उन्हें समानता की स्थिति और व्यक्ति की गरिमा और आर्थिक और सामाजिक न्याय के साधन और सामाजिक लोकतंत्र में आर्थिक सशक्तिकरण के शक्तिशाली हथियार का आश्वासन देता है। नब्बे प्रतिशत अनुसूचित जनजातियां मुख्य रूप से वन क्षेत्रों और दुर्गम इलाकों में रहती हैं, उनमें से 95 प्रतिशत गरीबी रेखा से नीचे हैं और पूरी तरह से कृषि या कृषि आधारित गतिविधियों पर निर्भर हैं।

बिना किसी तर्क या आधार के इस तरह की कठोर और नौकरशाही "अस्वीकृति" कानून के नियम, एफ.आर.ए. 2006 के प्रावधानों का मजाक बनाती है और प्राकृतिक न्याय से इनकार भी करती है। उचित प्रक्रिया का पालन न करके, जिला प्रशासन हाल के न्यायिक निर्णयों के खिलाफ जाने के अलावा, जो जंगलों पर निर्भर समुदायों के हितों की रक्षा करना चाहते हैं, वास्तव में कानून और हाल के न्यायशास्त्र दोनों की अवमानना कर रहे हैं।

कि, सामंथा (सुप्रा) के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने वामन राव बनाम भारत संघ, [1981] 2 एससीआर 1 के मामले का भी उल्लेख किया था, जहां सुप्रीम कोर्ट ने देखा था कि भारत में एक कृषि प्रधान समाज है। , "सामाजिक व्यवस्था में भूमि और व्यक्ति की स्थिति के बीच एक मजबूत संबंध" है। जमीन की वह पट्टी जिस पर वे जोतते हैं और रहते हैं, उन्हें समान न्याय और "उनके व्यक्ति की गरिमा को उन्हें आजीविका का एक अच्छा साधन प्रदान करके" का आश्वासन देता है। कृषि भूमि सुरक्षा की भावना और भय से मुक्ति का आधार है। सुनिश्चित अधिकार शांति और समृद्धि के लिए एक स्थायी स्रोत है। यह कि, इस मौलिक न्यायशास्त्र को समझने के बजाय, प्रशासन-स्पष्ट रूप से एक दिवालिया वन विभाग के प्रभाव में, 1991 के गोवर्धन निर्णय को वापस ले रहा है, एक निर्णय जिसे अब खारिज कर दिया गया है और अब अप्रासंगिक है।

13. कि, हम सम्मानित जिला प्रशासन के ध्यान में लाना चाहते हैं कि, फरवरी 2019 में सुप्रीम कोर्ट के वनों से वनाश्रित समुदाय के अचानक विवादास्पद आदेश के बाद, याचिकाकर्ताओं द्वारा गुमराह किए जाने के बाद "बेदखल" करने का आदेश, दोनों जनजातीय मामलों के मंत्रालय (MOTA) कड़ी आपत्ति जताई जिसके बाद कोर्ट ने अपने ही आदेश के संचालन पर रोक लगा दी है। दरअसल, थारू समुदाय की एक महिला नेता नेवादा राणा ने एक अन्य वरिष्ठ आदिवासी महिला नेता सोकालो गोंड के साथ ऑल इंडिया यूनियन ऑफ फॉरेस्ट वर्किंग पीपल्स (एआईयूएफडब्ल्यूपी) और सिटीजन फॉर जस्टिस एंड पीस (सीजेपी) के साथ हस्तक्षेप किया है। उच्चतम न्यायालय। इस ऐतिहासिक हस्तक्षेप में, हमने एफ.आर.ए. 2006 के ऐतिहासिक उद्देश्य पर एक विस्तृत तर्क दिया है और यह कैसे "अधिकारों की मान्यता" कानून है। (हस्तक्षेप आवेदन संख्या 107284/2019 सोकालो गोंड और अन्य)

14. इसके अलावा, हम सम्मानित जिला प्रशासन को सूचित करना चाहते हैं कि वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम, 1972 को भी 2006 में संशोधित किया गया था ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि आरक्षित क्षेत्रों के भीतर पारंपरिक वनाश्रित समुदायों की आजीविका को मान्यता दी गई और संरक्षित किया गया। संशोधित धारा 380 के अलावा, धारा 38वी (3) में अब यह भी कहा गया है कि एक क्षेत्र को टाइगर रिजर्व के रूप में अधिसूचित करते समय, टीसीए बाघ वाले जंगलों या बाघ में रहने वाले

लोगों के कृषि, आजीविका, विकास और अन्य हितों को सुनिश्चित करेगा। रिजर्व। ” धारा 38वी 2 (बी) के तहत भी "स्थानीय लोगों की आजीविका संबंधी चिंताओं" का उल्लेख और संरक्षण किया गया है। वन्य जीवन (संरक्षण) संशोधन विधेयक 2006 (डब्ल्यूएलपीए) मूल अधिनियम, वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम, 1972 में और संशोधन करने के लिए 2006 में संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया था। राज्य सरकारों और उनके प्रशासन को इनके बारे में पता होना चाहिए। कानून और नीति में मौलिक परिवर्तन क्योंकि वे अधिक लोकोन्मुखी होने का संकेत देते हैं न कि औपनिवेशिक न्यायशास्त्र।

आपसे अनुरोध है कि हमारी इस अपील पर गम्भीरता से विचार करते हुए जिला स्तरीय समिति को हमारे दावों पर पुनः गहन विचार करने हेतु निर्देशित करें। अन्यथा मजबूरन हमें न्याय पाने के लिये माननीय उच्च न्यायलय का भी दरवाज़ा खटखटाना होगा।।

भवदीय

अध्यक्ष एवं सदस्य

ग्राम स्तरीय वनाधिकार समिति

ग्रामः-.....

पलिया कलां खीरी

प्रति0

1. केन्द्रीय जनजातीय मंत्रालय।

2. अध्यक्ष जिला स्तरीय वनाधिकार समिति-खीरी।

3. अध्यक्ष उपखण्ड स्तरीय वनाधिकार समिति, पलिया कलां खीरी।